अनाज की बर्बादीः क्या छिपा है कोई राज़?

जयकुमार

इसमें कोई दो राय नहीं है कि हमारे देश में अनाज की बर्बादी होती आई है। अक्सर तरह-तरह के आंकड़ों में भी इस समस्या का गंभीर रूप सामने आता रहा है। भारत जैसे देश में अनाज की बर्बादी चिंता की बात तो है, लेकिन इसका विश्लेषण करते समय यह भी देखना होगा कि आंकड़ों की भयावहता में कहीं कुछ अतिशयोक्ति तो नहीं है?

शादियों का मौसम चल रहा है। अगर देश में कहीं अनाज की बर्बादी देखनी हो तो इन शादी समारोहों में होने वाले 'स्वरुचि भोज' इसका निकृष्टतम उदाहरण है। महज़ दिखावे या परंपरा के नाम पर विवाह समारोहों में जिस तरह से आठ-दस नहीं, पचासों व्यंजन बनाए जाते हैं, वह खाद्य सामग्री की बर्बादी की एक प्रमुख वजह बन रहा है। दुर्भाग्यवश अब यह दिखावा शहरों से आगे निकलकर गांवों में भी पहुंच गया है। उधर, फसलों पर प्राकृतिक आपदाएं बढ़ रही हैं। बेमौसम बारिश के मामलों में बढ़ोतरी हो रही है। और अब तो मौसम वैज्ञानिकों द्वारा इस साल अल-नीनो प्रभाव की आशंका भी जताई जा रही है। ऐसे हालात में अनाज की बर्बादी चिंता का विषय तो है ही।

यह सवाल अक्सर उठता आया है कि आखिर हमारे देश में खाद्य सामग्री बर्बाद कितनी होती है। इसका उचित आकलन कैसे किया जाए, यह एक बड़ा व जटिल मुद्दा है, लेकिन कुछ माह पूर्व तत्कालीन केंद्रीय कृषि मंत्री शरद पवार ने बताया था कि देश में हर साल 44 हज़ार करोड़ रुपए का अनाज और फल-सब्ज़ियां बर्बाद हो जाती हैं। चूंकि उन्होंने यह बयान संसद में दिया था तो इसे काफी हद तक तथ्यपरक ही माना जाना चाहिए। पवार ने ऐसी समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जो लगातार बढ़ती जा रही है। जिस देश में एक बड़े वर्ग को आज भी कई बार भूखे ही सोना पड़ता है, रोज़ाना लाखों बच्चों को फास्ट-फूड्स के स्टाल्स के सामने रखे डस्टबीनों में फेंकी गई जूठन में से चुनकर अपना पेट भरना पड़ता है, वहां ऐसी बर्बादी निर्लज्जता के सिवाय कुछ नहीं है। यह निर्लज्जता सरकारी स्तर पर भी होती आई है और निजी स्तर पर भी।

बारिश में गेहूं की भीगती बोरियां अक्सर मीडिया में सुर्खियां बनती हैं। शादी-ब्याह के समारोहों और होटलों में होने वाली खाद्य सामग्री की बर्बादी का तो कोई आकलन भी नहीं होता होगा। अगर इस सामग्री को बचा लिया जाए तो निश्चित रूप से हम कई लोगों का पेट भर सकते हैं और इस तरह खाद्य सुरक्षा अधिकार कानून के क्रियान्वयन में आ रही दिक्कतों को भी काफी हद तक दूर कर सकते हैं।

गौरतलब है कि शरद पवार से पहले उनके जूनियर मंत्री रहे केवी थॉमस भी कह चुके हैं कि देश में 40 फीसदी खाद्य सामग्री बर्बाद हो जाती है। राहुल गांधी तो यह आंकड़ा 60 फीसदी तक दे चुके हैं। समस्या को गंभीर मानने के बावजूद ये दोनों ही आंकड़े अतिशयोक्ति पूर्ण ही कहलाएंगे। ऐसे में एक बड़ा सवाल यही उठता है कि आखिर फिर बीते कुछ अरसे के दौरान इस तरह के आंकड़े क्यों दोहराए जा रहे हैं, जबकि ये आंकड़ें खुद सत्ता-प्रतिष्ठानों की प्रतिष्ठा को ही कटघरे में खड़ा करते हैं।

विकसित देशों से कम बर्बादी

खाद्य मामलों से जुड़े विशेषज्ञों का कहना है कि भारत ऐसा अकेला देश नहीं है, जहां खाद्य पदार्थ बर्बाद हो रहे हैं। पश्चिमी देशों की तुलना में तो यह बर्बादी बहुत ही कम है।

भारत में फल-सब्ज़ियों और अनाज की कितनी बर्बादी होती है, इसका अनुमान लुधियाना स्थित सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ पोस्ट हार्वेस्ट इंजीनियरिंग एंड टेक्नॉलॉजी (सीआईपीएचईटी) की एक रिपोर्ट से भी लगाया जा सकता है। संस्था ने वर्ष 2010 में रेंडम तरीके से चुने गए 106 ज़िलों में 46 कृषि उपजों में होने वाली बर्बादी का एक विस्तृत अध्ययन किया था। इसके अनुसार फलों में यह बर्बादी 5.8 फीसदी (चीकू) से लेकर अधिकतम 18 फीसदी (अमरूद) तक थी। सब्ज़ियों में सबसे ज़्यादा बर्बादी टमाटरों में थी जो 12.4 फीसदी तक थी। अनाज और दालों में तो यह और भी कम 4 से लेकर 6 फीसदी तक ही थी।

इसकी तुलना में विकसित देशों में बर्बादी कहीं अधिक है। अकेले अमरीका में 165 अरब डॉलर (यानी 10 हज़ार अरब रुपए) से भी ज़्यादा की खाद्य सामग्री हर साल बर्बाद हो जाती है। वहां बर्बाद होने वाली इस सामग्री का 15 फीसदी हिस्सा भी बचा लिया जाए तो खुद वहीं ढाई करोड़ भूखे लोगों का पेट भरा जा सकता है। गौरतलब है कि अमरीका में 4.2 करोड़ लोग पोषण के लिए सरकार पर निर्भर है।

इसी तरह एलायंस ऑफ लिबरल्स एंड डेमोक्रेट्स इन युरोप की एक रिपोर्ट के अनुसार युरोप में हर साल करीब नौ करोड़ टन अनाज बर्बाद हो जाता है। इटली में जितना खाना हर साल नष्ट होता है, उससे पूरे इथियोपिया के लोगों का पेट भरा जा सकता है। 22 करोड़ टन खाद्य सामग्री विकसित देशों में बर्बाद होती है, जबकि उप-सहारा अफ्रीकी देशों में कुल उत्पादन ही 23 करोड़ टन है।

ये आंकड़े इस बात की गवाही देते हैं कि खाद्य सामग्री को बर्बाद करने में विकसित देश कम से कम भारत से कहीं आगे हैं।

बर्बादी का हौव्वा

यह स्वीकारते हुए भी कि हमारे देश में जो भी खाद्य सामग्री बर्बाद हो रही है, और उसे हर हाल में बचाने का प्रयास करना चाहिए, इस मुद्दे पर हमारे कर्णधारों द्वारा हौव्वा खड़ा करने से कई सवाल उठते हैं। सबसे बड़ा सवाल तो खुद उनकी नीयत का है। क्या उन्हें वाकई हमारे यहां के गरीबों की चिंता है? शरद पवार ने संसद में अनाज की बर्बादी पर चिंता जताते हुए यह भी जोड़ा था कि रिटेल में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश यानी एफडीआई को अनुमति देने के बाद उम्मीद है कि भारत में कोल्ड स्टोरेज सुविधाओं में बढ़ोतरी होगी और इससे खाद्य सामग्री में होने वाली बर्बादी को कम किया जा सकेगा। पवार ऐसे अकेले नेता नहीं हैं, जिनकी नज़र में बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा स्थापित किए जाने वाले कोल्ड स्टोरेज इस समस्या का बेहतरीन समाधान हैं। ऐसी बात करने वालों का इशारा निश्चित रूप से वॉलमार्ट और उन जैसे ही बड़े बहुराष्ट्रीय स्टोर्स की ओर है, जो भारत में अपने पैर पसारने को तैयार खड़े हैं। इन स्टोर्स की राह में सरकारी बाधाएं समाप्त कर दी गई हैं और अब तो नियमों में शिथिलता देकर उन्हें 10 लाख की आबादी से छोटे शहरों में भी अपने स्टोर खोलने की अनुमति मिल गई है। इन स्टोर्स के दागदार इतिहास के मद्देनज़र आम लोगों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के मन में कई सवाल और चिंताएं हैं।

तो अनाज बर्बादी जैसे संवेदनशील मुद्दे को उठाने का मकसद कहीं इन स्टोर्स के पक्ष में माहौल बनाना तो नहीं है? हालांकि अब कई अध्ययनों में यह साफ हो चुका है कि वॉलमार्ट जैसे बड़े स्टोर्स खाद्य सामग्री को बर्बाद होने से बचाने में तो क्या, उलटे उनकी बर्बादी का बड़ा कारण रहे हैं। अमरीका स्थित नेशनल रिसोर्सेस डिफेंस काउंसिल (एनआरडीसी) सहित कई शोध संस्थानों के अध्ययनों के अनुसार हर साल सुपरमार्केट्स में 40 फीसदी फल और सब्ज़ियां बर्बाद हो जाती हैं। इतना ही नहीं, इस बर्बाद सामग्री को जब लैंडफिल (कचरा भराव स्थलों) में डाला जाता है तो वहां सड़ने के कारण वे बड़े पैमाने पर ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन की वजह भी बनती है।

ऐसे में खाद्य सुरक्षा से जुड़े विशेषज्ञों का यह कहना वाजिब ही है कि जब वॉलमार्ट जैसे स्टोर अमरीका में ही खाद्य सामग्री की बर्बादी को रोक नहीं पा रहे हैं तो वे हमारे यहां कैसे सफल होंगे? यह केवल छलावा है, जिसके आधार पर उनके लिए भारत में ज़मीन तैयार की जा रही

है। इससे तो देश में खाद्य सुरक्षा की स्थिति और भी खराब होगी। अन्य साइड इफेक्ट्स होंगे वे अलग। हालांकि अब यह देखना होगा कि नरेंद्र मोदी की अगुवाई में केंद्र में आई नई सरकार का रवैया इनके प्रति क्या रहता है। भाजपा घोषित तौर पर वॉलमार्ट के खिलाफ रही है।

अगर खाद्य सामग्री ही बचानी है तो उसके लिए हम बहुराष्ट्रीय स्टोर्स के कोल्ड स्टोरेज पर निर्भर क्यों रहें? इसके कई आसान उपाय मौजूद हैं। पुराने ज़माने में घरों में मिट्टी की बड़ी-बड़ी कोठियां होती थीं, जिनमें अनाज साल-दो साल तक सुरक्षित रहता था। इन्हीं कोठियों में एक समाधान और संदेश छिपा हुआ है। संदेश यह कि अनाज का सुरक्षित भंडारण स्थानीय स्तर पर कहीं आसानी से किया जा सकता है। सरकार ऐसी व्यवस्था बनाए कि स्थानीय स्तर पर भी खाद्य सामग्री का भंडारण हो और फिर वही सामग्री सार्वजनिक वितरण प्रणाली में आए। मध्यप्रदेश में गेहूं, छत्तीसगढ़ में चावल, कर्नाटक में रागी, राजस्थान में बाजरा व मक्का का स्थानीय स्तर पर भंडारण किया जाए और फिर उसे वहां के स्थानीय लोगों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत बांटा जाएं। यानी सार्वजनिक वितरण प्रणाली में स्थानीय स्तर की वे तमाम चीज़ें भी शामिल कर ली जाएं जो स्थानीय लोग खाते हैं। केवल गेहूं और चावल ही नहीं, मोटे अनाज और अन्य सभी प्रकार की सामग्री। इसके एक साथ कई फायदे होंगे। एक ही जिन्स के भारी-भरकम भंडारण पर होने वाले अनावश्यक व्यय को रोका जा सकेगा और उसमें होने वाली बर्बादी को कम किया जा सकेगा। गेहूं-चावल के इतर भी अन्य अनाजों के उत्पादन में बढ़ोतरी होगी, क्योंकि उन्हें सार्वजनिक वितरण प्रणाली में शामिल करने से किसानों को उनके भी अच्छे दाम मिलने लगेंगे। स्थानीय लोगों को वही खाद्य सामग्री सस्ते में मिल सकेगी, जिसके वे आदी हैं। और इसके साथ ही देश की कृषि में विविधता को बढ़ावा मिलेगा जो हमारी खाद्य सुरक्षा को और भी पुख्ता करेगी। ***(स्रोत फीचर्स)***